न मेरा किसी संप्रदाय से और न किसी धर्म से कोई सम्बन्ध है। मुझमें एक आनंद और शांति के दर्शन होने शुरू हुए हैं, एक प्रकाश का लोक मुझे दिखाई पड़ता है और मेरा मन होता है, कि उसमें आपको भी एक साझीदार बना दूँ। मेरे बोलने के पीछे किसी प्रकार का और कोई कारण नहीं है। मैं जैसे आनंद को देख रहा हूँ, मुझे प्रतीत होता है कि प्रत्येक को वैसे आनंद के मिलने की सम्भावना है। प्रत्येक मनुष्य के भीतर अपरिसीम शांति तक पहुँचने का मार्ग है। और प्रत्येक उस चेतना के लिए जो दुःख में और संताप में डूबी हुई है, जो आंतरिक पीड़ा और चिंता में दबी इंसानियत है, परम मुक्ति के प्रकाश में उठने की सम्भावना है। इस संभावना के संबंध में आपसे दो बातें कह सकूँ इसीलिए बोलता हूँ।

पूरे मुल्क में, मैं यह देख रहा हूँ कि आनंद विलीन हो गया है और लोगों के मन दुःख से और पीड़ा से भर गए हैं। ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि दुःख और पीड़ा से बाहर उठने का कोई रास्ता है। दुनिया में मनुष्य पहले भी रहे हैं लेकिन इतने पीड़ित कभी नहीं रहे हैं। इतिहास में पहला मौका है, कि हम अपने आनंद और शान्ति और प्रकाश के केंन्द्रों से वंचित हो गए हैं। उन मार्गों को छोड़कर, जिन पर चलकर अतीत में मनुष्य ने परम जीवन और चेतना को उपलब्ध किया था, हम एक मरुस्थल में खो गए प्रतीत होते हैं। और ऐसा प्रतीत होता है जैसे जीवन के जिस छुद्र घेरे में हम जी रहे हैं उसके पार और कोई जीवन नहीं है। इस भ्रान्ति को तोड़ देना मैं चाहता हूँ। जिस सामान्य छुद्र जीवन के घेरे में हम चलते हैं, दौड़ते हैं और इस आशा से भरे रहते हैं कि वहाँ कहीं आनंद उपलब्ध हो जायेगा और फिर एक दिन अचानक मौत घेर लेती है और साँस टूट जाती है। और पाया जाता है कि सारी दौड़ के बाद हम कहीं पहुँचे नहीं हैं।

एक छोटी सी कहानी से अपनी इस चर्चा को प्रारंभ करना चाहता हूँ। एक बच्चों की कहानी हैः एक अलाईस नाम की लड़की थी, वो परियों के देश में चली गई। यह कहानी बिल्कुल काल्पनिक है। अलाईस नाम की लड़की जब परियों के देश में पहुँची, ज़मीन से आकाश तक का रास्ता उसने पार किया था, तो वो बहुत थक गई थी। जब वो परिलोक में पहुँची, उसे बहुत भूख लग आयी थी। सुबह का सूरज फूट रहा था, उसने चारों तरफ देखा। थोड़े ही फासले पर एक दरख्त की हरी छाया में परियों की रानी बहुत से मिष्ठान लिए खड़ी थी और इशारा कर रही थी की आ जाओ। अलाईस ने दौड़ना शुरू किया, सुबह का सूरज था। दोपहर हो गई, सूरज ऊपर आ गया। और उसने आँख उठा कर देखा तो वो फासला उतना का उतना था। रानी अब भी खड़ी थी, दरख्त अब भी था, छाया विलीन हो गयी थी, और दोपहरी तप गई थी। वो बहुत हैरान हुई--वो इतना रास्ता दौड़ी लेकिन कहीं पहुँची नहीं थी। उसने फिर रानी की तरफ देखा।

रानी ने इशारा किया की दौड़ी चली आओ। वो फिर भी दौड़ती चली गई। भूख थी, आशा थी। सांझ होने को आ गई, सूरज डूबने लगा। अँधेरा घिरने लगा। वो थक के गिर पड़ी। उसने आँख उठा कर देखा, अब भी फासला उतने का उतना ही था। उसने उस रानी से चिल्ला के पूछा, यह कैसा देश है? उस रानी से चिल्ला के पूछा क्या तुम्हारे देश में चलने से रास्ता तय नहीं होता?

उस रानी ने कहा, किसी देश में नहीं होता, तुम्हारे देश में भी नहीं होता। कोई रास्ता आज तक तृप्ति तक मनुष्य को नहीं ले गया। जिस छुद्र जीवन में हम दौड़ते और चलते हैं, उसमें आशा का दीपक जरूर हमें पकड़े रहता है, कि हम कहीं पहुँचेंगे। कहीं पँहुचना हो जायेगा और कहीं सुरक्षा मिल जाएगी। और जीवन का अर्थ

मिल जायेगा। लेकिन दौड़ पूरी हो जाती है, हम चूकते जाते हैं। एक दिन, एक क्षण आता है अँधेरे में डूब जाना होता है। लेकिन रास्ता वैसे ही पड़ा रहता है, प्यास उतनी ही बनी रहती है, तृष्णा पूरी नहीं हो पाती है।

ये जो मनुष्य के जीवन का छुद्र घेरा है, दौड़ का, धर्म इसके पार जागने को कहता है। और धर्म का यही कहना है, कि छुद्र घेरे में हम दौड़ते जरूर हैं, लेकिन इस भ्रान्ति में ना पड़ें कि हम हैं। धर्म हमें यह बोध देना चाहता है कि जिस जीवन को हम जी रहें हैं वो इतना सुप्त, इतना मूर्च्छित है, कि यह कहना भी भ्रान्ति है कि मैं हूँ। यह कहना भी भ्रान्ति है कि हम अभी हैं और जीवित हैं। हम लगभग स्वप्न में हैं और निद्रा में चलते हुए हमारे जीवन पर सवाल है--अभी हमारे होने का भी निश्चय नहीं है।

निकोडर्मस नाम के एक व्यक्ति ने जीसस क्राइस्ट से एक रात जाकर पूछा था कि मैं क्या करूँ कि मुझे शान्ति मिल जाये? जीसस क्राइस्ट ने कहा, 'तुम अभी हो ही नहीं। अभी तुम इस भ्रान्ति में मत पड़ना कि तुम हो। इसके पूर्व कि तुम्हे आनंद और शान्ति का राज्य मिले तुम्हें होना पड़ेगा। अभी तुम्हारा होना, तुम्हारी सत्ता नहीं है।'

ये बात बहुत हैरानी की लगेगी अगर कोई मुझसे और आपसे कहे कि हमारा होना नहीं है, तो हमें बहुत हैरानी होगी लेकिन सच में अगर थोड़ा विश्लेषण करेंगे मनुष्य का तो हम पायेंगे अभी हमारे भीतर कोई स्थिर केंद्र नहीं है। जिसे हम अपना केंद्र कह सकें। सुबह हम कुछ और होते हैं, शाम को कुछ और हो जाते हैं। एक क्षण हम कुछ और होते हैं, दूसरे क्षण कुछ और हो जाते हैं। भीतर सब बदल रहा है। और जिन क्रियाओं को हम अपनी क्रियाएँ कहते हैं और जिन विचारों को हम अपने विचार कहतें हैं वे भी हमारे नहीं हैं। जितने आपके विचार होंगे वे सब पराये और उधार हैं। उनमे कोई भी एक आप की अनुभूति नहीं हैं। थोड़ा विचार करें, अगर सारे पराये विचार आपसे छीन लिए जायें तो एक-आध ऐसा विचार बचा रहेगा जो आपका है? क्या एक-आध विचार दिखाई पड़ेगा अपने भीतर, जिसे कह सकें कि यह मेरा है? एक भी विचार उपलब्ध नहीं होगा जो आपका अपना है। और जिन क्रियाओं को आप समझते हैं, यह मेरी क्रियाएं हैं, आप हैरान होंगे कि वे क्रियाएं भी यांत्रिक हैं, मेकेनिकल हैं वे भी आपकी नहीं हैं। अगर मैं आपका अपमान करूँ और आपको क्रोध आ जाये तो इस भ्रान्ति में मत रहना कि आपने क्रोध किया है। आपने क्रोध नहीं किया है, क्रोध हो गया है। ऐसे ही जैसे हम बटन दबा दें और बिजली का बल्ब जल जाये। यहाँ अपमान हुआ, वहाँ क्रोध की घटना यांत्रिक ढंग से घट गई है। आपने क्रोध नहीं किया है।

अगर आपने क्रोध किया होता तो आप चाहते तो ना भी करते। लेकिन अपमान होते ही क्रोध घटित हो जाता है। विवेक और विचार का एक भी क्षण बीच में नहीं गुजर रहा है। अगर आप होश से भर जाएँ और चाहें तो ना करें।

एक लेखक खलिल जिब्रान थे। उन्होंने छोटी सी कहानी लिखी है। एक राजमहल के करीब एक पत्थर बहुत दिनों से पड़ा था। एक छोटा सा बच्चा वहाँ से निकला। उसने पत्थर को उठा के राजमहल की खिड़की की तरफ फेंका। जब वो पत्थर हवा में ऊपर उठने लगा, उसने नीचे पड़े हुए अपने पड़ोसी पत्थरों से कहा--मित्रो, जरा मैं आकाश के भ्रमण को जा रहा हूँ।

वो पत्थर ऊपर उठा और महल की खिड़की से टकराया। काँच टूट के टुकड़े-टुकड़े हो गये। उस पत्थर ने कहा--मैं सदा से कहता रहा, मेरे मार्ग में मत पड़ना। जो भी मुझसे टकराता है, चकनाचूर हो जाता है।

वो पत्थर खिड़की के भीतर जाकर फर्श पर गिरा। उसने कहा--बहुत थक गए अब थोडा विश्राम कर लें।

फिर महल के एक नौकर को आवाज पहुँची। वो भागा हुआ आया। पत्थर को उठाकर उसने वापिस फेंका। जब वापिस पत्थर फेंका जा रहा था, उसने सोचा काफी विश्राम कर लिया अब फिर यात्रा कर लें। जब वो

वापिस अपने पत्थरों के ढेर पर गिरने लगा उसने कहा--बहुत आकाश में उड़ा, अब थक गया अब घर वापस लौट रहा हूँ।

ये छोटी सी इतनी ही कहानी है और यह एक पत्थर की कहानी नहीं, पूरे मनुष्य की एक कहानी है। हमें ज्ञात नहीं हम कहाँ से इस जीवन में फेंक दिए जाते हैं? कौन सा हाथ हमें फेंक देता है? हमें ज्ञात नहीं फिर किस दिन अचानक कौन सा हाथ हमें छीन लेता है? हमें पता नहीं। और फिर जीवन भर जिन क्रियाओं को हम करते हैं उन क्रियाओं में हम इस भ्रान्ति में जीते हैं कि हम कर रहे हैं। वे सारी क्रियाएं यांत्रिक हैं और सुप्त हैं और मूर्च्छित हैं। वे हम से नहीं होती हैं। वे हम पर बाहर से प्रतिफलित होती हैं और इसीलिए धर्म और योग मनुष्य को एक बुनियादी बोध यह देना चाहते हैं कि तुम अभी परतंत्र हो और प्रतिक्रियाओं से भरे हो, प्रतिक्रियाओं से घिरे हो। अभी तुम्हारा होना नहीं है। और जब तक तुम अपने होने को, अपने बीईंग को, अपनी सत्ता को, अपनी चेतना को स्वतंत्र रूप से उपलब्ध नहीं कर लेते तब तक जीवन में आनंद भी संभव नहीं हो सकता है।

स्वतंत्र चेतना--इस स्थिति को पा लेना प्रभु को पा लेना है। प्रतिक्रियाओं से मुक्त बाह्य जीवन के थपेड़ों से मुक्त, बाहर के कम्पन और प्रतिबिम्बों से मुक्त, जिस क्षण व्यक्ति स्वतंत्र चेतना को उपलब्ध हो जाता है, उस दिन और केवल उसी दिन उसे आनंद के स्रोत को उपलब्ध करने का अवसर मिलता है।

एक जर्मन विचारक थे हैरीगेल, वो कुछ दिनों के लिए जापान की यात्रा पर गए थे। उस यात्रा में छोटी सी घटना घटी जिससे हैरीगेल का पूरा जीवन बदल गया था। और वही छोटी सी घटना प्रत्येक में घटनी चाहिए, तो जीवन बदल पाता है। वे जापान गए थे, जापान से लौटने को थे, सोचा पूरब के किसी साधु से भी मिलते चलें। एक साधु को उन्होंने टोक्यो में आमंत्रित किया। अपनी जिस होटल में ठहरे थे उसमें भोजन के लिए पाँच मंजिल का लकड़ी का मकान था जिसमें उनका निवास था। ठहरे थे वो पाँचवी मंजिल पर उस लकडी के मकान में। उन्होंने बीस-पच्चीस मित्रों को और उस साधु को आमंत्रित किया था। जब वे भोजन करने बैठ गए थे, और बातें चल रही थीं, और भोजन चल रहा था तभी अनायास भूकंप आया। जापान तो भूकम्पों का देश है। भूकंप आया। पूरा मकान लकड़ी का थर-थर काँप गया। लोग भागे उठकर। वो भागना बिल्कुल ही यांत्रिक है, अभी यहाँ भूकंप आ जाये तो आप सोच के थोड़ी भागेंगे! आप बस भागेंगे। भागने में और भूकंप के आने के बीच विचार नहीं होगा। बस, मूल प्रवृत्ति भीतर से कहेगी, कहने का भी मौका नहीं होगा, बस आप पाएंगे कि आप भाग रहे हैं। वो भागना यांत्रिक होगा। वो सारे लोग भागे, सीढ़ी से, लिफ्ट से। भीड़ हो गई दरवाजे पर, हैरीगेल ने लिखा है कि मैं भी भागा। लेकिन द्वार पर भीड़ हो गयी थी और मुझे एक क्षण ख्याल आया साधु का क्या हुआ? मैंने लौट कर देखा, और मैं हैरान हो गया साधु ने कुर्सी पर पैर सिकोड़ लिए हैं, आँख बंद कर ली हैं और चुपचाप बैठा हुआ है। हैरीगेल ने लिखा है कि मैं जन्म से साहसी प्रवत्ति का तो नहीं हूँ। लेकिन उस दिन न मालूम कैसी बात ने मुझे पकड़ लिया कि मेरा मन हुआ कि आज इस साधु को छोड़ के ना जाऊँ। इस साधु को क्या हुआ है? आज इस भूकंप के बीच वो निष्कंप बैठ गया है। मैं रुक गया, मेरे हाथ पैर कंपते हैं। वो बैठ गया। कोई आधा मिनिट, पौन मिनिट कंपन रहे, भूकंप चला गया। उस साधु ने आँख खोली। जहाँ से बात छूट गई थी वहीं से बात प्रारम्भ कर दी।

हैरीगेल ने पूछा कि अभी मैं बातचीत में उत्सुक नहीं हूँ। लेकिन पूछना चाहता हूँ अभी यह जो भूकंप आया है, इसका क्या हुआ?

उस साधु ने कहा मैं अपने भीतर एक ऐसे केंद्र पर सरक गया था जहाँ कोई भूकंप नहीं पहुँचते। एक युग था, समय था कि भूकंप मुझे भी छूते थे, मैं भी भूकम्पों के हाथ में एक खिलवाड़ था। फिर एक समय आया मैं

अपने भीतर डूबता गया और भूकंप दूर छूटते गए। जीवन के भीतर मैं एक ऐसे केंद्र पर पहुँच गया हूँ जहाँ कोई कम्प, जहाँ कोई बाहर के धक्के जहाँ बाहर की कोई चोट नहीं पहुँचती है।

इस स्थिति में भीतर सरक जाना कि बाहर के कम्पन से आप बाहर हो जाएँ, अपने को पा लेना है। आत्मज्ञान अपने भीतर इतने निष्कंप स्थिति में पहुँच जाने से उत्पन्न होता है। धर्म इस आत्मज्ञान को पाने की सीढ़ी है। इस आत्मज्ञान से ही विराट प्रभु तक पहुँचने का मार्ग खुलता है। जो अपने को नहीं जानता है वो प्रभु को भी नहीं जान पाता है। जो अपने ही प्रति अज्ञान से भरा हो वो प्रभु के प्रति भी ज्ञानयुक्त नहीं हो सकता है। प्रभु को पाने के लिए एक ही मूल्य चुकाना होता है। उस सौदे में एक दाम जरूर देना होता है। वो सौदा निर्मूल्य नहीं है। प्रभु को पाने में आत्मज्ञान का मूल्य देना होता है। जो अपने को जानेगा वो प्रभु को जानने का अधिकार पा जाता है। जो अपने को भी नहीं जानता उसे प्रभु को पाने और प्रभु तक ऊपर उठने की कामना से नहीं भरना चाहिए।

इस आत्मज्ञान को, आत्मिक स्थिति को, इस भीतर के निष्कंप प्रकाश की स्थिति तक पहुँच जाने को मनुष्य ने लाखों उपाए किये हैं, लाखों प्रयास किये हैं। हजारों मार्गों से उस तक पहुँचने की चेष्टा की है। इन सारे प्रयासों को मैं तीन हिस्सों में टूटा हुआ देखता हूँ, उन तीन के नाम आपने भी सुने होंगे लेकिन शायद ही उनके ठीक-ठीक अर्थ स्पष्ट हुए हों! मैं उनकी चर्चा करना चाहता हूँ।

वे रास्ते, जिनसे प्रभु को पाने की आकांक्षा की गई है, जिनके माध्यम छुद्र ने विराट होना चाहा है, जिनके माध्यम से सीमित ने असीम को छूने की कोशिश की है, ऐस तीन रास्ते हैं। एक रास्ता है भक्ति का, एक रास्ता है ज्ञान का, एक रास्ता है कर्म का। भक्तियोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग; ऐसे उनके नाम हैं। इन तीनों रास्तों को थोड़ा सा हम समझें। और तब मैं यह कहना चाहूँगा यह तीन रास्ते अलग नहीं हैं और जो इन्हें अलग समझता है वो भ्रान्ति में है। यह तीनों रास्ते किसी एक ही बात के घटने से घट जाते हैं और यह तीनों रास्ते इकट्ठे हैं। एक केंद्रीय क्रांति के हो जाने पर यह तीनों उपलब्ध हो जाते हैं। इन तीन रास्तों के सम्बन्ध में थोड़ी से बातें और आपसे कहूँ।

पहला रास्ता भक्तियोग का है। भक्तियोग से क्या अर्थ है--मंदिरों में पूजा, प्रार्थना, अर्चना? भक्तियोग का उतना सीमित अर्थ नहीं है। भक्तियोग का उतना सीमित अर्थ कतई नहीं है। भक्तियोग को अगर हम ठीक से समझें तो हमारी प्रार्थनाओं से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। हमारी तो सारी प्रार्थनाएँ हमारी वासनाओं के रूपांतर होती हैं। मनुष्य जो भी प्रभु से माँगता है वो सब माँगना प्रभु के मिलने में बाधा है। हम जो भी माँगते हैं, अगर हम माँगते हैं तो हम प्रार्थना में नहीं हैं। प्रार्थना में देना होता है माँगना नहीं। प्रार्थना में अपने को देना होता है और किसी छोटी सी चीज देने से भी काम नहीं चलता है। लेकिन हमारी तो सारी प्रार्थनाएं माँगने की होती है। जो प्रार्थना माँगने की हैं वो प्रभु के प्रति निवेदित नहीं हैं यह जानना चाहिए। जिस प्रार्थना में मैं अपने को दे रहा हूँ समग्र भाव से; तो वो प्रार्थना, अर्चना केवल प्रभु के प्रति निवेदित है।

गौतम बुद्ध के समय में एक ब्रह्मदत्त नाम का राजा उनके पास मिलने गया था। जिस दिन वो उनके पास गया उसके दोनों हाथों में फूल थे। बुद्ध ने उसे दूर से आते हुए देखा। संघ के बीच में एक छोटा सा मार्ग था, उस पर वो चल के आता था। बुद्ध ने दूर से देखकर कहा--मित्र गिरा दो। ब्रह्मदत्त ने समझा कि फूल गिराने को बुद्ध कहें हैं। उसने अपने बाएं हाथ के फूल नीचे गिरा दिए, वो दो कदम आगे बढ़ा। बुद्ध ने दोबारा कहा--मित्र गिरा दो। उसने अपने दूसरे हाथ से फूल भी नीचे गिरा दिए। वो दो कदम और आगे बढ़ा। अब उसके पास गिराने को कुछ भी नहीं था। बुद्ध ने तीसरी बार कहा--मित्र गिरा दो।

वो रुका। अवाक खड़ा रह गया। उसने सोचाः अब तो मेरे पास कुछ भी गिराने को नहीं है। बुद्ध हँसने लगे। बुद्ध ने कहा मैंने जो गिराने को कहा वो ही तुम बचाये खड़े हो और जो फूल तुमने गिराए हैं, उनसे मेरा कोई प्रयोजन ना था।

वो बोलाः मैं क्या लिए खड़ा हूँ?

बुद्ध बोलेः तुम्हारे चलने में, तुम्हारे कदम उठाने में, तुम्हारे हाथ हिलाने में, तुम्हारा मैं प्रकट हो रहा है। तुम इतने 'मैं भाव' से भरे हुऐ हो, उसे गिरा दो। अगर उसे गिराते हो तो तुम बुद्ध की शरण में पहुँच जाते हो।

भक्ति का मार्ग अहंकार समर्पण का मार्ग है। भक्ति का अर्थ है मैं को विसर्जित कर देना है। अहंकार को विसर्जित कर देना है। यह विसर्जन जिस क्षण पूरा हो जाता है, उसी दिन भक्त भगवान को उपलब्ध हो जाता है। अहंकार विसर्जन भक्ति है और कोई फूल चढ़ाने से भक्ति का कोई संबंध नहीं है। और प्रार्थनाओं से, अर्चनाओं से कोई संबंध नहीं है। और मंदिरों में बैठ जाने से और ग्रंथों के पाठ कर लेने से कोई संबंध नहीं है। एक ही बात से केन्द्रीय संबंध भंक्ति का है, कि मैं किस भाँति अपने अहंकार को विसर्जित कर दूँ। जिस क्षण मेरा अहंकार चला जाता है, उसी क्षण अमरत्व को व्यक्ति उपलब्ध हो जाता है।

एक बहुत प्राचीन कहानी मुझे स्मरण आती है--एक बिल्कुल काल्पनिक कहानी। काल्पनिक कहानियों में बहुत कुछ देखा जो हास्यजनक है, और सत्य के बहुत निकट है। एक ग्रीक कथा है, कहानी बिल्कुल ही झूठी होगी। यूनान में एक मूर्तिकार था उसकी प्रसिद्धि थी कि वो ऐसी मूर्तियाँ बना सकता है, अगर हम मूल के साथ रख दें तो पहचनना कठिन है कि कौन मूर्ति है और कौन मूल है? अगर वो मेरी मूर्ति बनाता और मेरे शरीर और मूर्ति को खड़ा कर दिया जाए तो दूर से पहचानना कठिन है, कि कौन मूर्ति है और कौन मूल है? ऐसी उसकी प्रसिद्धि थी। जब वो मरने को हुआ तो उसके मन में यह विचार आया की क्या मैं मौत को धोखा नहीं दे सकता हूँ? उसने अपनी ही ग्यारह मूर्तियाँ बनाईं और अपने बड़े कक्ष में उन ग्यारह मूर्तियों को रखकर उनके बीच छिप कर खड़ा हो गया।

मौत आयी। मैंने कहा था कहानी बिल्कुल काल्पनिक है। ऐसी कोई मौत आने को नहीं है! मौत आयी... तो कक्ष में उसने प्रवेश किया। वहाँ उसने देखा बारह एक जैसे लोग खड़े हैं। मौत तो हैरान हो गई। उसे तो समझ नहीं आया कि किसको ले जाना है? एक को ले जाना था वहाँ बारह एक जैसे लोग थे। वो चित्रकार उनमें सांस रोक के हुए छिपा हुआ खड़ा था। मृत्यु वापस लौट गई। उसने प्रभु को कहा वहाँ बारह एक जैसे लोग हैं। मैं किसको लाऊँ?

ईश्वर ने कहा, असली को खोज लेना बहुत आसान है। एक छोटा सा सूत्र मैं बता देता हूँ, तू जा के उस सूत्र का प्रयोग करना। जो असली वो अपने आप ही बाहर निकल आएगा। उस चित्रकार को उस सूत्र का कोई पता नहीं था। इसीलिए मौत के धोखे में आ गया और पकड़ा गया। लेकिन समस्त धर्मों ने उस सूत्र को बता दिया है, प्रकट कर दिया है। और जो लोग उस सूत्र को ठीक से समझ लेंगे वे मौत से बच जाते हैं। अमृत्व को उपलब्ध हो जाते हैं।

वो मौत वापस लौटी, उस मौत ने आँखों से सब जगह दृष्टि डाली। वहाँ बारह एक सी मूर्तियाँ खड़ी थीं। वो चित्रकार छिपा था। उसने सारी मूर्तियों को देखा और देख कर कहा और तो सब ठीक है, एक छोटी सी भूल रह गई है।

मूर्तिकार के मुँह से निकला--कौन सी भूल?

और मृत्यु ने कहा यही कि तुम अपने को नहीं भूल सकते हो। यही तो नहीं भूल सकते कि तुमने इन्हें बनाया, कि तुम कर्ता हो। कि तुम हो--यह तुम्हारा अहंकार नहीं भूल सकता है। तुम मृत्यु से बच भी नहीं सकते हो।

इस अहंकार को भूल जाओ तो मृत्यु तुम्हें खोजने में असंभव है। इस अहंकार के विसर्जित होते ही हम उस सीमा के पार हो जाते हैं जहाँ तक मृत्यु है। और उससे संयुक्त होते हैं जहाँ से अमृत का प्रांरम्भ है। भक्तियोग अहंकार विसर्जन के द्वारा अमृत की उपलब्धि का योग है। लेकिन अकेली भक्ति का आग्रह भ्रांत और गलत है। यह मेरी मान्यता है। अकेली भक्ति एकांगी हो जाती है, अज्ञानपूर्ण भक्ति अंधी हो जाती है। और परिणाम में भक्तियोग के जो अंधविश्वास के रूप प्रचलित हुए वो उपलब्ध होते हैं। अकेली भक्ति ज्ञानयोग से वियुक्त और अलग अंधी हो जाती, अंधविश्वास में पतित हो जाती है। और अकेली भक्ति कर्म से वियुक्त होकर निष्क्रिय हो जाती है और जीवन से उसके संबंध टूट जाते हैं। अकेली भक्ति के मैं समर्थन में नहीं हूँ। मेरा मानना है भक्ति समग्र जीवन साधना की एक सीढ़ी भर है और मनुष्य के परिपूर्ण विकास में उसका एक हिस्सा है। मनुष्य के व्यक्तित्व की पूर्णता तक पहुँचने में उसका एक हाथ है, लेकिन अकेली भक्ति पर्याप्त नहीं है।

दूसरा मार्ग, दूसरा योग, दूसरी पद्धति ज्ञानयोग की है। ज्ञानयोग का क्या अर्थ है? क्या ज्ञानयोग का अर्थ है कि हम बहुत से विचारों से, बहुत से ग्रंथों से अपने मन को भर लें? क्या ज्ञानयोग का अर्थ है कि मैं पांडित्य को उपलब्ध हो जाऊँ तो ज्ञानी हो जाऊँगा? क्या ज्ञानयोग का अर्थ है कि जितने अधिक मेरे पास विचार होंगे उतना ही मेरे पास ज्ञान होगा? इस भ्रान्ति में पड़ना अनावश्यक है। ज्ञानयोग का पांडित्य से कोई भी संबंध नहीं है। विपरीत--पांडित्य, ज्ञानयोग के आने में बाधा जरूर हो सकता है। पांडित्य बौद्धिक है, पांडित्य को इकठ्ठा करना, मन को विचार से भर लेना एक बौद्धिक व्यायाम से ज्यादा नहीं है। उससे मनुष्य में कोई क्रांति नहीं होती। केवल जानने का अहंकार और बड़ा हो जाता है। केवल मैं जानता हूँ--ये भाव और घना हो जाता है।

पांडित्य अहंकार तृप्ति का मार्ग बन जाता है। आश्चर्य यही है कि मनुष्य के अहंकार को भरने के बहुत सूक्ष्म रास्ते हैं, वे रास्ते इतने सूक्ष्म है कि आमतौर पर हमें दिखाई नहीं पड़ते। उनको हम पहचान नहीं पाते। कभी धन इकठ्ठा कर के मनुष्य अपने अहंकार को तृप्त करता है। कभी यश और पद पर पहुँचकर अहंकार को तृप्त करता है। कभी बहुत ज्ञान को इकठ्ठा कर के ज्ञानी होने के दंभ को तृप्त कर लेता है। और कभी त्याग कर के भी, मैं कह रहा हूँ त्याग कर के भी अहंकार को तृप्त कर लेता है। अहंकार के रास्ते सूक्ष्म हैं और हम कुछ भी करें अगर बहुत विवेक युक्त ना हो तो अहंकार अपना पोषण कर लेता है। त्याग करके भी, अत्यंत विनयी हो कर भी मैं एक अहंकार से भर सकता हूँ कि मैं विनयी हूँ। बहुत त्याग करके मैं इस अहंकार से भर सकता हूँ कि मैं एक त्यागी हूँ। और इसीलिए आमतौर से साधु अहंकार मुक्त तो नहीं होता, आमतौर से और अहंकार से भर जाता है। और सूक्ष्म अहं की तृप्ति उसके भीतर होने लगती है।

वैसा ही पंडित के साथ होता है। बौद्धिक रूप से बहुत सी सूचनाएं इकट्ठी कर लेना, मुर्दा, मृत... क्योंकि ग्रंथों से कुछ जीवित उपलब्ध नहीं हो सकता है। जीवित उपलब्ध तो आत्म अनुभूति से होगा, ग्रंथ से नहीं। गं्रथ से जो पांडित्य इकठ्ठा होता है वो मन पर और बोझ हो जाता है, और पर्दा बन जाता है। मन पर विचार का पर्दा है उस परदे को तोड़ देने पर और उस परदे को शून्य कर देने पर जो प्रज्ञा उत्पन्न होती है ज्ञानयोग उससे संबंधित है।

ज्ञानयोग विचार-शून्यता में, विचार मुक्त स्थिति में, जब प्रज्ञा का बोध होता है, उससे सम्बंधित है। ज्ञानयोग विचार विसर्जन है। जैसे भक्ति अहंकार विसर्जन है वैसे ज्ञानयोग मन विसर्जन, विचार विसर्जन है। हम इतने विचार से भरे हैं कि प्रभु का विचार और प्रभु का दर्शन हम तक नहीं पहुँच पाता है। हम इतने घने विचार

में हैं, अभी बोल रहा हूँ लेकिन आपके भीतर विचार चलते होंगे, विक्षिप्त, असंगत उनकी दौड़ चलती है। आपके भीतर विचार की एक फिल्म दौड़ रही है। मैं जो बोल रहा हूँ तो मेरी विचारधारा बहुत मुश्किल से आप तक पहुँच पाए! क्योंक बीच में ही आपके विचारों की दीवार उसको तोड़ देगी, मरोड़ देगी, नया रूप, प्रारूप और रंग दे देगी। मनुष्य को यदि प्रभु को उपलब्ध करना है तो विचार की इन तरंगों का सो जाना जरूरी है। जैसे अगर किसी लहराती पानी की झील पर, हमें चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को पाना हो तो लहरों का सो जाना जरूरी है। ताकि झील दर्पण बन जाये और चाँद उसमें प्रतिफलित हो सके। लेकिन अगर लहरें भरी हों झील पर तो चाँद का प्रतिबिम्ब खंडित हो जाता है।

प्रभु तो हमारे निरंतर निकट है या कि कहूँ, निकट शब्द भी गलत है। हम तो निरंतर प्रभु में खड़े हैं। लेकिन विचार की इन तरंगायित लहरों के कारण, इस उपद्रव के कारण, मन पर दौड़ रहे इन असंगत विचारों के कारण हम उस सत्य को अनुभव नहीं कर पाते हैं। प्रभु को पाना नहीं है, वो कहीं खोया नहीं है, केवल हमको अपनी आँख साफ और शांत कर लेनी है। और मन को मौन कर लेना है ताकि उसका दर्शन उपलब्ध हो जाये।

एक साधु के बाबत में कहता था। उसके पास एक विश्वविद्यालय का अध्यापक मिलने गया, पूछने गया कि मैं प्रभु के दर्शन को पाना चाहता हूँ, कैसे पाऊँ?

उस साधु ने कहा, आप थक गए मालूम होते हैं। और दोपहरी घनी थी, धूप थी तेज। माथे पर पसीना है, एक दो मिनिट विश्राम कर लें। तब तक मैं थोड़ी सी चाय ले आऊँ बनाकर, तो वह पी लें। शायद चाय पी लेने से विश्राम तो मिल ही जायेगा और यह भी हो सकता है कि जो पूछा है उसका उत्तर भी मिल जाये।

पहली बात तक तो प्रोफेसर समझा कि ठीक है। लेकिन उस साधु ने कहा शायद उससे उत्तर भी मिल जाये कि प्रभु को कैसे पाया जा सकता है, तब वो कुछ हैरान हुआ! क्योंकि साधु फक्कड़ था, कुछ न कुछ होगा अर्थ! थोड़ी देर वो बैठा रहा। साधु चाय लाया बनाकर, हाथ में प्याली दी। प्याली में चाय को डाला ऊपर से। प्याली भर गई लेकिन वो साधु चाय को डालता ही गया। प्रोफेसर ने कहा, रुकें। अब तो भर गयी।

लेकिन वो डालता गया, नीचे का बर्तन भी भर गया। प्रोफेसर ने कहा, ठहरिये। यह तो बर्तन नीचे का भी भर गया।

लेकिन साधु था कि चाय को डालता ही गया, चाय तो फर्श पर गिरने को होने लगी। प्रोफेसर ने कहा, ठहरो--उसका धीरज टूट गया--अब तो यह चाय फर्श पर बिखर जाएगी। अब तो एक बून्द और चाय रखने को इसमें स्थान नहीं।

उस साधु ने कहा, और आपके मन में एक बून्द भी प्रभु के रखने को स्थान है? भीतर जगह है? प्रभु को आमंत्रित तो करना चाहते हो लेकिन उसे बिठाने को भीतर जगह है? प्रभु को बुलाना तो चाहते हो, उसे अतिथि तो बनाना चाहते हो, लेकिन उसके योग्य स्थान खाली किया? और, छोटे स्थान से काम नहीं चलेगा। विराट को बुलाना हो तो पूरे विराट को तो हम अपने भीतर ले नहीं सकते। लेकिन जितने हम हैं, कम से कम उतने तो खाली हो जाएँ कि वो पूरा... जितने हम हैं उतना तो भर जाये। अगर भीतर के पूरे अँधेरे को हटाना है, अगर भीतर के समस्त विकार को हटाना है तो कम से कम जितना भीतर मेरे स्थान है उतना तो रिक्त कर दूँ।

आप हैरान होंगे कि ज्ञानयोग की मान्यता है कि जो अपने को रिक्त कर सकेगा वो भर दिया जाता है। जो अपने को खाली कर लेगा वो परिपूर्ण हो जायेगा। जो अपने को शून्य कर लेगा पूर्ण से उसका मिलन हो जाता है। तो ज्ञानयोग विचार इकट्ठा करना नहीं है। विचार शून्य और विचार मुक्त होना है। जिस क्षण मन को शून्य में छोड़ दिया और लुप्त हो गए और सब खाली और शून्य हो गया उसी क्षण पूर्ण के दर्शन प्रारंभ हो जाते हैं। शून्य के दर्पण में पूर्ण को पाया जाता है। यह ज्ञानयोग है।

लेकिन अकेला ज्ञानयोग और ज्ञानयोग के नाम से प्रचलित विचार अगर चलें तो सामन्यतः मनुष्य सुस्त और रुखा हो जाता है। उसके जीवन में रस और सौंदर्य विलीन हो जाता है। ज्ञानयोग अकेला भक्ति से पृथक और अलग, सूखा-सूखा है। उसमें रस और सौन्दर्य और उसमें जीवन का अभाव है। और भक्ति की प्रीति और भक्ति का आनंद उसमें नहीं है। और कर्मयोग से पृथक ज्ञानयोग, निष्क्रिय और नपुंसक है।

(आडियो में आवाज अस्पष्ट)

मेरा मानना है कि ज्ञानयोग अकेली घटना नहीं है। मेरा मानना है ज्ञानयोग संयुक्त घटना है, जो भक्ति और कर्म के साथ घटे तो ही जीवन विकासपूर्ण, परिपूर्ण, अपनी पूरी संभावना के विस्तार को उपलब्ध हो जाता है।

तीसरा मार्ग कर्मयोग का है। कर्मयोग का अर्थ कोई सेवा करने में नहीं, कोई काम कर लेना भर, उतना ही नहीं है। कर्मयोग का अर्थ प्रभु के लिए अर्पित कोई नैतिक कर्म कर लेना, बस उतना नहीं है। कर्मयोग का अर्थ है ऐसे कर्म को करना कि कर्ता उपस्थित ना हो। हमारे सब कर्म में कर्ता उपस्थित है। हमारे सब कर्म में कर्ता का भाव उपस्थित है। कर्मयोग का अर्थ है कर्म के द्वारा ऐसे जीवन को साधना कि केवल कर्म रह जाए, कर्ता शून्य हो जाए। जिस क्षण केवल कर्म रह जाये और कर्ता शून्य हो गया हो, उस क्षण कर्मयोग फलता है। इस कर्ता शून्यता को साधने के लिए, कर्मयोग को साधने के लिए, कर्ता को विसर्जित करने के लिए अनासक्ति के प्रयोग हैं। फलासक्ति-शून्यता के प्रयोग हैं। हमारे समस्त कर्म भविष्य से बंधे हुए हैं, भविष्य में फल की आकांक्षा को पकड़े हुए हैं। हम कर्म करते हैं वर्तमान में, आकांक्षा जीती है भविष्य में। अगर हम बहुत ठीक से समझें तो हम वर्तमान में जीते ही नहीं। या तो हम अतीत में जीते हैं, स्मृति में या हम भविष्य की आकांक्षा में और कल्पना में जीते हैं।

यह तथ्य जानकार आपको हैरानी होगी कि आप एक क्षण को भी वर्तमान में नहीं होते हैं। आपका पूरा चित्त या तो अतीत स्मृतियों से दबा रहता है या भविष्य की कामनाओं और कल्पनाओं से भरा रहता है। और मजा यह है कि जीवन वर्तमान में है। ना तो अतीत की कोई सत्ता है सिवाए स्मृति के, ना भविष्य की कोई सत्ता है, सिवाय कल्पना के। सत्ता वर्तमान की है। हम सत्ता से टूटे हुए हैं क्योंकि या तो हम अतीत में हैं या भविष्य में हैं। वर्तमान का छोटा सा क्षण हाथ से यूँ ही बहा जाता है। सत्ता वर्तमान में है और अगर कर्म वर्तमान में हो जाये तो हम सत्ता से संयुक्त हो जायेंगे। उसी मार्ग से प्रभु तक और विराट तक पहुंचना हो जायेगा। इसीलिए कर्मयोग वर्तमान क्षण में जीने को कहता है। दोनों आर-पार नहीं। ठीक वर्तमान के क्षण में वो ही जी सकेगा जो फलासक्ति शून्य हो। वर्तमान के क्षण में वो ही जी सकेगा जो कर्ता के भाव से ना भरा हो।

इसीलिए जैसा मैंने कहा, भक्ति अहंकार विसर्जन है। मैंने कहा, ज्ञान विचार विसर्जन है। तो वैसा ही कर्मयोग आसक्ति विसर्जन है। आसक्ति के जाते ही कर्म वर्तमान में स्थिर हो जाता है। और वर्तमान के माध्यम से सत्ता की उपलब्धि होनी प्रारम्भ हो जाती है। इस भाँति व्यक्ति कर्म करता है और कर्ता का बोध उपलब्ध ना होने से समस्त कर्म उसके भीतर से प्रभु के द्वारा किये हुए हो जाते हैं। वो केवल एक साधन और उपकरण रह जाता है।

कबीर ने गाया है कि मैं केवल उसके स्वरों को बजाने वाली बांस की एक पोंगरी हूँ। कबीर ने कहा, स्वर मेरे नहीं है। मैं तो केवल एक बांस का टुकड़ा हूँ। स्वर उसके हैं, संगीत उसका है। मेरी योग्यता तो इतनी ही काफी है कि मैं उसके स्वर के बहने में बाधा ना बनूं। कर्मयोग कुछ और करने को नहीं कहता। विराट को हमारे भीतर से बहने में हम बाधा ना बनें, इतना ही पर्याप्त है।

जिस क्षण व्यक्ति इस भाव से जीवन में भर जाता है, कर्मयोग की उपलब्धि हो जाती है। लेकिन अकेला कर्मयोग भी मेरे देखने में अधूरी, एकांगी साधना है, खंडित साधना है। और अगर ज्ञान से युक्त ना हो तो अंधी हो जा सकती है। भक्ति से युक्त ना हो तो सुस्त और यांत्रिक हो जा सकती है। मेरी दृष्टि में जिस अखंड योग की कल्पना खड़ी हो रही है, उसमें मुझे दिखायी देता है भक्ति, ज्ञान और कर्म तीनों एक साथ घटित होने चाहिए। एक साथ व्यक्तित्व की यह तीनों दिशाएं, यह तीनों आयाम, एक साथ परिपूर्ण होना चाहिए। यह कैसे होंगे?

जैसा मैंने कहा, एक अहंकार विसर्जन को कहता है, एक विचार विसर्जन को कहता है, एक आसक्ति विसर्जन को कहता है। मुझे दिखाई पड़ता है, ध्यान में यह तीनों घटनाएं एक साथ घट जाती हैं। ध्यान से एक ही साथ अहंकार, विचार और आसक्ति विसर्जित हो जाती है। इसीलिए मैंने इन तीनों योगों के प्राण और सारभूत 'ध्यानयोग' को देखना शुरू किया है। ध्यानयोग के घटित होने पर भक्ति, कर्म और ज्ञान एक साथ तीनों उपलब्ध हो जाते हैं। उन तीनों को फिर खंडित टुकड़ों में तौलने और बांटने की, पकड़ने की जरूरत नहीं रह जाती है। इसीलिए अंतिम रूप से मैं उस केंद्रीय ध्यान के सम्बन्ध में थोड़ी सी बात करना चाहता हूँ जिसके माध्यम से व्यक्तित्व का यह त्रिमुखी विकास संभव होता है, सधता है। ध्यान के संबंध में कुछ भ्रांतियां पहले दूर कर दूँ।

पहली बात कि ध्यान एकाग्रता नहीं है। साधारणतः हम पढ़ते हैं और सुनते हैं ध्यान एकाग्रता है। ध्यान एकाग्रता नहीं है। एकाग्रता मन का ही प्रयोग है, एकाग्रता मन की ही शक्ति है। एकाग्रता मन की टूटी पृथक-पृथक चित्त वृत्तियों को इकठ्ठा करना है--किसी एक विषय पर, एक विचार पर, एक नाम पर, एक प्रतिमा पर। कहीं इनको इकठ्ठा करना, एकजुट करना एकाग्रता है। ध्यान मन के बाहर जाने का नाम है। एकाग्रता मन की शक्ति है--एकजुट--उससे विराट शक्ति उत्पन्न हो सकती है। लेकिन शक्ति ही उत्पन्न हो सकती है, शान्ति नहीं। मानसिक प्रयोग हो सकते हैं सिद्धियाँ भी उपलब्ध होंगी, लेकिन स्वरूप ज्ञान नहीं।

एकाग्रता शक्तियोग का अंग है। ध्यान शांतियोग का अंग है। ध्यान मन के बाहर जाने का नाम है। एकाग्रता को मैं ध्यान नहीं कहता। कंसंट्रेशन को और मेडिटेशन को, एकाग्रता को और ध्यान को अलग करता हूँ। जब तक मन में कोई भी एक विचार भी है, तब तक हम मन के भीतर हैं। जब मन के भीतर कोई विचार नहीं होता है और जब मन के भीतर कोई विषय और कोई ऑब्जेक्ट नहीं होता, और जब मन की चेतन शक्ति के लिए कोई आधार नहीं होता और चेतना निराधार शून्य में छूट जाती है, उस स्थिति में हम ध्यान में होते हैं। शून्य में होना, ध्यान में होना है।

दूसरी भ्रान्ति, ध्यान तल्लीनता नहीं है। हम आमतौर पर समझते हैं किसी भी चीज में तल्लीन हो जाना ध्यान है। ध्यान तल्लीनता नहीं है। तल्लीनता एक प्रकार की मूर्च्छा है चाहे संगीत से हो, चाहे भजन से हो, चाहे नृत्य से हो जाये। तल्लीनता एक प्रकार की मूर्च्छा है जिसमें हम केवल अपने को भूल जाते हैं, अपने को पाते नहीं। तल्लीनता में थोड़ा सा सुख मिल सकता है। लेकिन वही खतरा भी है, उस सुख से हम यह धोखा दे सकते हैं अपने को कि हम यह जो कर रहे हैं, हम कोई वास्तविक प्रयोग कर रहे हैं। लेकिन वो झूठा होगा। नाम स्मरण करें, तल्लीनता हो जाएगी। बैठ के भजन गाने लगें, तल्लीनता हो जाएगी। किसी पद का पाठ करें निरंतर, तल्लीनता हो जाएगी। नाचने लगें मंजीरे लेकर, तल्लीनता हो जाएगी। भजन गा लें, सितार बजा लें, तल्लीनता हो जाएगी। तल्लीनता का अर्थ है उतने थोड़े से क्षणों को आप अपने को भूल जाएंगे और अपनी चिंताओं को और दैनंदिन परेशानियों को विस्मृत कर देंगे। एक शराबी भी वैसी ही तल्लीनता पैदा करता है। एक नृत्य देखने वाला या नाटक देखने वाला भी वैसी तल्लीनता पैदा कर लेता है।

अभी अमरीका में अल्बर्ट फक्तुनी नाम के एक वैज्ञानिक ने मैक्सेलिन नाम के इंजेक्शन बनाये हैं। वो इंजेक्शन दे देने से भी वैसे ही तल्लीनता आ जाती है। दो तीन घंटों के लिए आप बिल्कुल तल्लीन हो जाते हैं जैसे कि भजन गाने वाला हो और नाचने वाला हो और कीर्तन करने वाला हो जाता है। तीन घंटे के बाद वो ऐसी बातें करता है जैसे आमतौर से भजन करने वाला और नृत्य करने वाला भक्त करता है। लेकिन बस थोड़ी देर में वो नशा उतर जाता है और वापिस आदमी वैसे ही हो जाता है। मेक्सेलिन के आविष्कार ने सारे अमरीका और सारी दुनिया में एक घबराहट पैदा कर दी है। क्योंकि इस समय जो भक्ति के रूप प्रचलित हैं और इस तरह की साधना के जो रूप प्रचलित हैं, इन सबके बाबत एक बात साफ़ हो गई है कि वे केवल तल्लीनता के द्वारा व्यक्ति की चिंताओं को थोड़ी देर को भुला देते हैं। चिंताओं को भुला देना एक बात है और चिंताओं से मुक्त हो जाना बिल्कुल दूसरी बात है। तल्लीनता इसीलिए ध्यान नहीं है।

फिर ध्यान क्या है? ध्यान जागरूकता है। ध्यान परिपूर्ण रूप से अपने समस्त मन और समस्त शरीर की क्रियाओं के प्रति अवेयरनेस है, जागरूकता, चैतन्य, साक्षी भाव को उत्पन्न करना है। अभी हम चलते हैं तो मूर्च्छित होते हैं। अभी हम विचार करते हैं तो मूर्च्छित होते हैं, अभी हम हाथ हिलाते हैं तो वो में मूर्च्छा है। अभी हमारी सब क्रियाएँ मूर्च्छित हैं। इन क्रियाओं के प्रति जागना, इन क्रियाओं के प्रति साक्षी होने का भाव पैदा करना है। इनको देखना, इनके दृष्टा बनना ध्यान की शुरुआत है। और आप हैरान होंगे की जैसे ही व्यक्ति इन समस्त क्रियाओं का दृष्टा बनता है, ये क्रियाएं विसर्जित होने लगती हैं, शांत होने लगती हैं। जैसे-जैसे दृष्टा का बोध घना होता है, शून्यता उतरने लगती है। जिस क्षण भीतर परिपूर्ण दृष्टा और साक्षी की स्थिति बन जाती है, सिर्फ देखने वाले आप रह जाते हैं--अलिप्त, अनासक्त, शांत, अंसग--जिस क्षण सिर्फ देखने वाले रह जाते हैं, कोई निर्णय नहीं लेते मन के ऊपर कि यह बुरा है कि भला? विचार अच्छा है? असत्य है कि सत्य? कोई निर्णय नहीं लेते, कोई संघर्ष नहीं करते। केवल देखते रह जाते हैं, केवल दर्शक रह जाते हैं। उस पल, उस दर्शन की शांत होती घनी स्थिति में धीरे-धीरे विचार विलीन होने लगते हैं। क्रियाएं विलीन होने लगती हैं। उस निष्कर्म--उस कर्म के अतीत--चेतना का दर्शन प्रारम्भ हो जाता है।

ध्यान--शून्य, साक्षी भाव में अपने समस्त जीवन के प्रति जागना है। यह जागना संघर्ष से नहीं होता है। मन से लड़के कोई जाग ही नहीं सकता है। जागना देखने की क्रिया है। कोई लड़ना नहीं है, कोई दमन नहीं करना। कोई सप्रेशन नहीं, मन के साथ कोई जद्दोजहद, संघर्ष नहीं। उसके साथ कोई युद्ध नहीं थामना है। उसके साथ कुछ भी नहीं करना। उसे केवल देखते रह जाना है। और जो देखते रह जाएगा वो जीत जाता है। जो दृष्टा बनता है, वो जीत भी जाता है। संघर्ष में पड़े, मन के साथ, तो अँधेरे के साथ लड़ना प्रारम्भ कर दिया।

एक कहानी मुझे यूरोप की स्मरण आती है। एक होटल में यूरोप के एक नगर में एक यात्री आकर ठहरा। जिस दिन वो आकर ठहरा, होटल के मैनेजर ने कहा कि मैं कमरा देने में असमर्थ हूँ क्योंकि जिस कमरे में ऊपर की मंजिल में आपको मुझे ठहराना है उसके नीचे एक सज्जन ठहरे हैं जो थोड़ी थोड़ी बात में बहुत खिन्न हो जाते हैं। अगर ऊपर दरवाज़ा भी ज़ोर से लगा दिया, या फर्श पर ज़ोर से चल दिए तो उनसे झगड़े होने की सम्भावना है। इसीलिए बेहतर है आप कहीं और ठहर जाएँ। उस यात्री ने कहा, मुझे तो केवल दो-चार घंटे रात सोना भर है। दिन भर काम करूँगा रात बारह बजे लौटूंगा। आकर सो जाऊँगा, सुबह पांच बजे उठकर चले जाना है। कोई सम्भावना नहीं है कि मेरे और उनके बीच कोई विरोध आ जाए। मुझे कमरा दे दें।

कमरा उनको दे दिया गया। रात वो बारह-एक बजे थका मांदा लौटा। बिस्तर पर बैठा। एक जूता खोल के उसने फर्श पर पटका। तभी उसे स्मरण आया कि कहीं जूते की आवाज़ से नीचे के सज्जन की नींद ना टूट जाए। उसने दूसरे जूते को आहिस्ते से रखा, फिर वो सो गया।

कोई दो घंटे बाद नीचे के मेहमान ने आ के दस्तक दी। दरवाज़ा उसने खोला। उसने कहा, कहिये? उन्होंने कहा, आपके दूसरे जूते का क्या हुआ?

उसने कहा कि इसमें भी कोई भूल की बात है क्या? एक जूता में ज़ोर से पटका भूल हो गई थी। स्मरण आया, दूसरे को आहिस्ते से रख दिया।

वो बोला, कि कोई भूल तो नहीं हुई। लेकिन जब एक जूता गिरा तो मैंने सोचा कि सज्जन आ गए। किंतु जब दूसरा नहीं गिरा तो मैंने सोचा दूसरे का क्या हुआ? फिर मैंने इस विचार को निकालने की बहुत कोशिश की। इसको मैंने बहुत धक्के दिए कि मुझे किसी के जूते से क्या प्रयोजन है? कुछ भी हुआ हो! लेकिन जितना मैं इस विचार को निकालने लगा मेरी नींद ख़राब होती गई। जितने मैंने धक्के दिए, मैंने पाया कि मेरे में मन में तो बस एक ही विचार लौट-लौट के चला आ रहा है कि उस दूसरे जूते का क्या हुआ? तब मैं घबरा गया कि कहीं पूरी रात मेरी ख़राब न हो जाये। इसीलिए मैं पूछने आया हूँ।

अगर मन से आप भी लड़ियेगा तो वैसी ही घटना घट सकती है और कुछ नहीं होगा। जिस विचार को निकालने जाइएगा वो दुगने वेग से वापस लौटेगा। प्रयोग करके देख सकते हैं। जिस विचार को धक्के देगें, पाएंगे वो दुगने वेग से और शक्ति से वापस लौट रहा है। मन से लड़ना अज्ञान है, अवैज्ञानिक है। उससे लड़ना नासमझी है। उससे लड़ना शुरू करियेगा, हार जाइयेगा। पाईयेगा, हमारे बस में नहीं है। फिर कहने लगियेगा कि हमारे सामर्थ्य के बाहर है साधना। मन से लड़के भूल शुरू हो जाती है। इसीलिए ध्यान मन से लड़ने को नहीं कहता है। और जो कहते होंगे कि मन शत्रु है आपका, और उसे ठीक कर देना है और दबा देना है। और दुश्मन है और उसे जीत लेना है। वो गलत, दो कौड़ी की बाते हैं। अवैज्ञानिक बातें कह रहे हैं। मन से लड़के कोई प्रयोजन हल नहीं होता है। केवल व्यक्तित्व टूट सकता है, व्यक्तित्व विकृत हो सकता है, विक्षिप्त तक हो सकता है।

मैं आपको मन से लड़ने को नहीं कहता। मैं तो मन के प्रति जागने को कहता हूँ। जो भी होता है मन में, घंटे भर बैठ जाएँ और चुपचाप बिना निर्णयक बने, बिना कोई निर्णय लिए, बिना किसी संघर्ष के देखते रहें। और आप हैरान होंगे, बहुत आश्चर्य से भर जाएंगे। चुपचाप देखने पर विचार बहुत ही शांत, निष्प्राण हो जाते हैं। उनका आवक काम हो जाता है। धीरे-धीरे वो विरल हो जाते हैं। रास्ता सूना होने लगता है और मन खाली होने लगता है।

कुछ ही महीनों में आप पाएंगे कि सिर्फ देख-देख के ही उनकी मृत्यु हो गई है। इससे ज्यादा कुछ और करना नहीं होता है। मन के प्रति देखना है, बस। चुपचाप देखते रहने से आप पाएंगे--एक क्षण को अभी देखें। जैसे ही आप भीतर देखेंगे चुपचाप क्या है भीतर? चुपचाप देखेंगे और पाएंगे--कि भीतर जैसे ही चुप हो के आपने देखा तो वहाँ कुछ भी नहीं है। जैसे ही मौन होकर भीतर देखें, जैसे ही शांत होकर भीतर देखें, दृष्टा बनें, साक्षी बनें--वैसे ही वहां शून्य उत्पन्न होना शुरू हो जाता है।

हम सोये हैं इसीलिए मन है। हम जाग जाएँ मन की मृत्यु हो जाती है। हमारे सोने में मन का जीवन है, हमारे जागने में उसकी मृत्यु है। मन की मृत्यु योग है। मन की मृत्यु को पा लेना धर्म को पा लेना है।

मन से मुक्त होकर हमें विराट उपलब्ध हो जाता है। और जो है उसे उपलब्ध कर लेना, अपरिसीम आनंद की घटना है। उसके बाद ही अभय उपलब्ध होता है। क्योंकि दिखाई देता है कि उसकी कोई मृत्यु नहीं। उस शांत, शून्य क्षण में जो उपलब्ध होता है, दिखाई देता है कि उसकी कोई मृत्यु नहीं। उसकी कभी कोई मृत्यु नहीं हुई। उसका कभी कोई जन्म नहीं हुआ। वो अजन्मा और कभी न मरने वाला है। और अमृत तत्व को जानते ही और यह जानते ही कि मैं वही हूँ, यह जानते ही 'तत्वमसि श्वेतकेतु' इस महावाक्य का उद्घाटन हो जाता है। मैं

वही हूँ, वही अमृत, वही अजन्मा! तब मृत्यु के प्रति जीवन से भय विसर्जित हो जाता है। असुरक्षा विसर्जित हो जाती है। दुःख की आग विसर्जित हो जाती है।

धर्म ने यह अमृत-आनंद को पाने का मार्ग उद्घाटित किया था। धर्म कोई त्याग का मार्ग नहीं है, धर्म कोई छोड़ने का मार्ग नहीं है। धर्म कोई संघर्ष का मार्ग नहीं है। धर्म तो परिपूर्ण को पा लेने का मार्ग है। और इसलिए धर्म से अधिक हितकर मनुष्य के लिए कुछ भी नहीं। उस माध्यम से ही व्यक्ति दुःख के निरोध को उपलब्ध हो सकता है। इसे हम ठीक से समझ लें तो धर्म की प्रक्रियाएं वैज्ञानिक हैं, अन्धविश्वास नहीं हैं। और कुछ प्रक्रियाएं मनुष्य के आंतरिक नियमों से सम्बंधित हैं। ऊपर से कोई काल्पनिक, बौद्धिक विचार से सम्बंधित नहीं हैं। इस छोटी सी चर्चा में मैंने आपसे यह कहा कि ध्यानयोग के द्वारा जिस दिन अमृतमय, शांत केन्द्र के दर्शन होंगे, उसी दिन सम्पूर्ण जीवन प्रेम से भर जायेगा और भक्ति का उदय होगा। उसी क्षण सम्पूर्ण जीवन प्रज्ञा से भर जायेगा और ज्ञान का उदय होगा। और उसी दिन सम्पूर्ण जीवन एक आलौकिक सक्रियता से भर जायेगा और कर्म का उदय होगा। ध्यान से भक्ति, कर्म और ज्ञान एक साथ घटित हो जाते हैं। इसीलिए असली धर्म केवल एक मात्र ध्यान की साधना से सम्बंधित है।

ईश्वर करे और थोड़ा सा विवेक जागे तो यह ध्यान प्रत्येक को उपलब्ध हो सकता है। ऐसे कोई अपात्र नहीं है--मैंने यह पूरे देश के कोने-कोने में कहना शुरू किया है। प्रभु को पाने में कोई भी अपात्र नहीं हो सकता है। क्योंकि वो हमारा स्वरूप है। और सारी बातें पाने में कोई पात्र होगा, कोई अपात्र होगा कोई योग्य होगा, कोई अयोग्य होगा--लेकिन प्रभु को पाने का जहाँ सम्बन्ध है, कोई अपात्र नहीं। कोई अयोग्य नहीं। प्रत्येक व्यक्ति उसमें ही खडा है, थोड़ा मुड़ने की बात है।

मैं अभी एक गांव में था। मैंने वहां कहा, अगर कोई व्यक्ति 50 मील पूरब की तरफ चला जाये और फिर पश्चिम में होना चाहे तो क्या करना होगा? फिर केवल मुँह मोड़ लेने से वो पश्चिम में हो जायेगा! आप कितने ही प्रभु से दूर क्यों न हों--हज़ार कोस--आप दूर नहीं गए हैं। और मुँह फेरते ही आप वापस उपलब्ध हो जायेंगे। हम प्रतिक्षण उसी में हैं और प्रति श्वास उसी में है। इसलिए कोई अपात्र नहीं है। अपने ही हाथ से हमने कठिन है, कठिन है, दुर्गम है, और ऐसी बातें प्रचारित करके मनोवातावरण पूरा का पूरा ख़राब कर लिया है। इसे दोहरा देने की जरूरत है कि एक-एक व्यक्ति के मन में, उस प्रभु को पाने की में कोई कठिनाई नहीं है।

एक छोटी सी अंतिम कहानी और अपनी चर्चा को मैं पूरा करूँगा। जापान में एक सेनापति युद्ध को गया था। युद्ध को जा रहा था लेकिन उसके सैनिकों के चेहरे मुरझाये हुए थे, साहस टूटा हुआ था क्योंकि खबर थी की दुश्मन दस गुनी ताकत से भरा हुआ है। और दुश्मन के पास दस गुने सैनिक हैं।

सेनापति बहुत हिम्मत बढ़ाता था, लेकिन उन लोगों में कोई साहस नहीं था। राह पर युद्ध को जाते, बीच में खंडहर मंदिर में वो प्रार्थना करने के लिए रुका। उसने अपने सैनिकों को कहा की प्रार्थना कर लें। वो मुरझाये, थके-मांदे, घबराये हुए निराश सैनिक उस मंदिर में प्रार्थना करने गये। प्रार्थना के बाद सेनापति ने आनंद से भरे हुए कहा कि मुझे प्रार्थना में दिखाई दिया कि हम जीत गये हैं। भाग्य का निर्देश हुआ है कि हम जीत जायेंगे। जीत बिल्कुल आसान है। उसने यह कहा लेकिन सैनिकों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वो वैसे ही सुस्त, और वैसे ही उदास और निराश बैठे रहे। तभी उस सेनापति ने अपने खींसे से एक सिक्का निकाला और कहा कि यह मैं सिक्का फेंकता हूँ और अगर यह सिर के बल गिरा, सीधा गिरा तो तुम जानना की भाग्य हमारे साथ में है और जीत हमारी होगी और जीत सरल है। और अगर सिक्का उल्टा गिरा तो मैं तुम्हें कोई युद्ध में नहीं ले जाऊँगा और वापस लेकर चलूँगा। हम समझेंगे कि हम हार गए हैं।

सैनिकों ने आशा से भरे हुए उस सिक्के की तरफ देखा। उसने सिक्के को फेंका। चांदी का सिक्का धूप में चमका। नीचे गिरा और सारे सैनिक उत्साह से भर गए। सिक्का सीधा गिरा था सिर ऊपर था। और फिर एक पंद्रह दिन बाद जब पूरी ताकत से जीतकर वापस लौटे, उसी मंदिर में धन्यवाद देने को प्रभु को। जब वे प्रार्थना कर चुके, एक बूढ़े सैनिक ने सेनापति से कहा कि भाग्य साथ हो तो दुनिया की कोई भी शक्ति हरा नहीं सकती है। सेनापति ने कहा, निश्चित ही। खींसे से सिक्का निकाला और सैनिकों से कहा, इस सिक्के को देख लो। सिक्के के दोनों तरफ शीर्ष है, सिक्का दोनों तरफ सीधा था।

हम अपने हाथ से सिक्का ऐसा डालेंगे जो कि दोनों तरफ उल्टा है। एक हार का वातावरण है। एक मनोभाव कि बहुत कठिन है, बहुत कठिन है। यह हम अपने हाथ से डाले हुए हैं और उन सारे लोगों की सेवा करते हैं, खुशामद करते हैं और उनको पूछते हैं जो यह भाव हम में रोज-रोज पैदा करते जाते हैं। जो हम में सिर्फ यही पैदा करते हैं कि बहुत कठिन है, बहुत कठिन है। उनको हम पूजा करते हैं और उनको पालते हैं और आदर करते हैं। और वे सब इस निराशा के वातावरण को पैदा करते हैं--छुद्र आदमी को कहां प्रभु को पाना संभव है? लेकिन मैं आपसे कहूँ कोई इतना छुद्र हो नहीं सकता कि प्रभु को ना पा सके। छुद्रतम, अंतिम जो है वो भी प्रभु के उतने ही निकट है जितना कोई और। क्योंकि उसे हम खो नहीं सकते हैं, वो हमारा प्राण है। वो हमारी श्वास है, हम उसमें जीते हैं। वो हमारा जीवन है। इस आस्था से भरें कि उसे पाना आसान है और सरल है। और प्रत्येक पात्र है। कि कोई कारण नहीं कि उसे नहीं पाया जा सकता है। जो इतिहास में कभी एक मनुष्य ने पाया है वो प्रत्येक दूसरा मनुष्य पा सकता है। यह मेरी धारणा है और मनुष्य के इस गौरव को मैं एक-एक आदमी के मन में गुँजा देना चाहता हूँ कि तुम प्रभु को पाने के अधिकारी हो। और अगर खोया है तो अपने हाथ से। और आज और इसी क्षण चाहो तो पाना हो सकता है। यह थोड़ी सी बातें मैनें कहीं। आपने प्रीति से और शांति से मेरी बातों को सुना है, उसके लिए बहुत-बहुत अनुग्रहीत हूँ।